Volume-12, No. 1 Feb.-2025, pp. Hin.01-06

अष्टांग योग एवं शारीरिक शिक्षा

डॉ. वीरेन्द्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर,
शिक्षाशास्त्र विभाग,
डी.पी.बी.एस. कालिज अनूपशहर बुलन्दशहर उ.प्र. भारत
चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उ.प्र. भारत।

सार–
भारतीय वैदिक परम्परा में योग दैवीय गुणों की प्राप्ति की साधन है। उपनिषदों के अनुसार योग रोग व द्वेष से मुक्ति प्रदान करता है। यह शोक विनाशक है। योग की सर्वाधिक स्वीकृत एवं सर्वमान्य परिभाषा है–''योग चित्त की चंचल वृत्तियों का निरोध करता है।'' जहाँ गीता को कर्मों में कुशलता मानती है वहीं बौद्ध व जैन परम्परा योग को एकाग्रता मानती है। महर्षि अरविन्द शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक सभी स्तरों पर व्यक्त्वि के सम्पूर्ण विकास को योग मानते हैं। यह मनुष्य में अति मानव स्थिति को विकसित करता है, योग एक सृजानात्मक शक्ति है। अनादि काल से मनुष्य सुख प्राप्ति की और प्रवृत्त रहा है। योग शारीरिक शिक्षा भी मनुष्य द्वारा इसी दिशा में की गयी एक खोज है। योग शारीरिक शिक्षा में आध्यात्मिकता की प्रधानता होने के साथ–साथ लौकिकता का भी समावेश होता है।

मुख्य शब्द– अष्टांग योग, शारीरिक शिक्षा, यम व नियम, अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिगृह, नियम, शौच, सन्तोष, ईश्वर प्रणिधान, स्वाध्याय

प्रस्तावना–
योग एक अलौकि साधना है जिसे सर्व विद्या भी कहते हैं। समस्या समाधान का अनुपम साधन है। अलौकिक विद्या होते हुए भी आज लौकिक समस्याओं के समाधान में इसका प्रयोग होने लगा है। शारीरिक शिक्षा की अनेक ऐसी समस्याएँ है जिनका समाधान योग द्वारा किया जा सकता है। योग का एक महत्वपूर्ण भाग अष्टांग योग है। अष्टांग योग की शैक्षिक उपादेयता स्व प्रमाणित है। यह शारीरिक शिक्षा प्रक्रिया को अधिक तार्किक, अर्थसंगत एवं आनन्ददायिनी क्रिया में परिवर्तित कर सकता है।

अष्टांग योग एवं शारीरिक शिक्षा में उसकी उपादेयता–योग का उद्देश्य शरीर को स्वस्थ रखना होता है योग की सभी क्रियांओं का उद्देश्य शरीर का संचालन तथा सांसों पर नियन्त्रण करना होता है। योग 8 सोपानों में पूर्ण होता है यह आठ सोपान ही अष्टांग योग कहलाते हैं, जो निम्न प्रकार है–

यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाध्योऽष्टावगांनि। 2/29/पा0 यो0 सूत्र (यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि)

योग– आत्म संयम की वह साधना जिसमें निषेध होते हैं।
नियम– वे आदेश जो विधि के सूचक हैं।
आसन– शरीर की मुद्रायें
प्राणायाम– प्राण शक्ति का नियंत्रण
प्रत्याहार– इन्द्रियों का उनके विषयों से निग्रह
धारणा– मन का केन्द्रीयकरण
ध्यान– विकेन्द्रीकरण
समाधि– चरम चैतन्य।[1]
प्रथम पांच चेतना का निरोध करते हैं और अन्तिम तीन उसका प्रासार करते हैं।[2]
पतंजलि योग सूत्र में कहा गया है कि येाग के अनुष्ठान से जैसे–जैसे अशुद्वि का क्षय होता है, वैसे–वैसे ज्ञान का तेज विवेक ख्याति तक बढ़ता जाता है।[3]

योगांगःनुष्ठानादुशुद्विक्षयेजज्ञान दीप्तिराविवेकख्यातेः।[4]
इस विवेक ख्याति की प्राप्ति का मार्ग अष्टांग योग है। अष्टांग योग के आचरण से ही प्रज्ञा का प्रकाश तेज होता है।

यम व नियम
योग में यम तथा नियम इन दो सोपानों को सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया गया है। योग की सफलता के लिये यम तथा नियम आधारभूत

साधन हैं। इन दोनों से आसाधारण सिद्वियों की प्राप्ति होती है। आत्मा का विकास होता है और जीवन सुख–शान्ति से युक्त हो जाता है।[5]

यम– अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचार्यरिग्रिहा यमाः ।30। पा0यो0 सूत्र।

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्ममचर्य और अपरिग्रह–यह पांच यम हैं।

अहिंसा– अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैर त्यागः।। 35।। पा0यो0 सूत्र।

अहिंसा में दृढ़ व्यक्ति के पास से हिंसा का त्याग हो जाता है। उसके चारों ओर एक ऐसा चुम्बकीय वातावरण निर्मित हो जाता है जिसमें वैर भाव को कोई स्थान प्राप्त नहीं होता है।

किसी की हत्या न करना तथा शारीरिक चोट न पहुँचाना, शारीरिक पीड़ा न देना इत्यादि को ही सामान्यतः अहिंसा माना जाता है। परन्तु इसके साथ–साथ मानसिक रूप से किसी भी प्रकार का अहित न सोचना भी अहिंसा है। यदि वाणी से किसी को कष्ट पहुँचाता है, मन को आघात लगता है तो यह भी एक प्रकार की हिंसा है जिसे वाचिक हिंसा कह सकते हैं।[6]

साधक को मनसा, वाचा, कर्मणा, हिंसा की क्रिया एवं विचारों से दूर रहना चाहिए।

तत्रहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनामिन्द्रोहः।[7] शरीर, वाणी मन से किसी प्राणी को किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचना ही अहिंसा है।

सत्य– व्यास भाष्य के अनुसार– अथानुकूल वाणी एवं मन का व्यवहार होना अर्थात् जैसा देखा गया है, जैसा अनुमान किया गया हो एवं जैसा सुना गया हो, उसी प्रकार वाणी से कथन करना ही सत्य है। साथ ही यह वाणी प्राणियों के उपकार हेतु प्रयुक्त हुई हो।[8]

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। ।36।पा0यो0 सूत्र के उचित आचरण से कार्यों का समुचित परिणाम प्राप्त होता है।

जब व्यक्ति में सत्य प्रतिष्ठित हो जाता है और वह प्रत्येक देश, काल, वातावरण में इसका प्रयोग बिना किसी संकोच, भय के करने लगता है, तो उसके अन्दर दिव्य शक्ति व बुद्धि का विकास होता है। सत्य का साधक वाणी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। वह भविष्य दृष्टा हो जाता है।[9]

वास्तविक अर्थ में सत्य एक अत्यंत विस्तीर्ण और व्यापक तत्व है। सत्य भाषण सत्य का एक अत्यन्त छोटा अणु है। ईश्वर जीवन, प्रकृति को समझते हुए, भ्रम बंधन से स्वयं की सुरक्षा करते हुए सर्वोच्च पद की प्राप्ति का प्रयास करना ध्रुव सत्य है। सत्य को खोजना, सत्य को आत्मवत् करना और आत्मवत् सत्य को अभिव्यक्ति प्रदान करना तथा प्राण अर्पण करके भी सत्य पर दृढ रहना, सत्य परायणता है। यम की दूसरी स्थिति सत्य भाषण नहीं बल्कि सत्यपरायण होना है।[10]

अस्तेय– अशास्त्रीय विधि से अर्थात् धर्म के विरूद्ध अन्यायपूर्वक किसी दूसरे व्यक्ति के द्रव्य को ग्रहण करना अस्तेय है। परवस्तु में राग का प्रतिनिषेध होना ही अस्तेय है।[11]

अस्तेय का सर्वोत्कृष्टता के साथ पालन करने वाला व्यक्ति अपने मन में दूसरों की चीजों की अभिलाषा कभी नहीं करता है। इसकी सच्चाई, ईमानदारी की प्रामाणिकता के कारण लोग उस पर विश्वास करते हैं।[12]

कर्त्तव्य में त्रुटि या ईमानदारी का अभाव तथा अपने अधिकार से अधिक प्राप्त करना भी अस्तेय हैं अस्तेय से बचते हुए परिश्रम के प्रतिफल पर निर्भर रहना भी अस्तेय के अंतर्गत समाहित है।[13]

अस्तेय व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को पवित्रता–सुचिता प्रदान करता है। अस्तेय से सम्पूर्ण व्यक्तित्व परिष्कृत होता है, मस्तिष्क में दिव्यता उत्पन्न होती है।[14]

ब्रह्मचर्य– उपस्थेन्द्रिय के संयम का नाम ब्रह्मचर्य है।[15]

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः ।38। पा0यो0 सूत्र

ब्रह्म–अन्ति सत्य तत्व

चर्य–आचरण

शाब्दिक अर्थ के अनुसार अन्तिम सत्य तत्व तक पहुंचन में सहायक आचरण, ब्रह्मचर्य का मूलार्थ है। सभी प्रकार से यथायोग्य संयमित आचरण व जीवन व्यतीत करना ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ है। संयम का अर्थ पूर्णत्याग नहीं है, मर्यादित उपभोग करना ही संयम है।[16]

ब्रह्मचर्य, अभिनिवेश नाम कलेश पर विजय का सशक्त साधन है। उपनिषद् यह व्यक्त करते हैं कि ब्रह्मचर्य की साधना में सिद्ध देवगण मृत्यु भय से मुक्त होते थे। शारीरिक ऊर्जा का संचय ब्रह्मचर्य द्वारा होता है।[17]

महात्मा गाँधी ने इस सम्बन्ध में बहुत उत्तम कहा है–''ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की, सत्य की शोध में चर्या अर्थात् तत्संबंधी आचार। इस मूल अर्थ से सर्वेन्द्रिय संयम का विशेष अर्थ निकलता है, सिर्फ. .जननेन्द्रिय निरोध को ही ब्रह्मचर्य का पालन अधूरी व खोटी व्याख्या है। विजय मात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है।''[18]

अपरिगृह– विषयों के राग में विभिन्न प्रकार के दोषों को उत्पन्न कर, अपनी आवश्यकता से अधिक धन का संचय न करना ही अपरिग्रह है।[19]

अपरिगृह एक ऐसा सद्गुण है जो व्यक्ति में संतुष्टि के भाव को जन्म देता है। अपरिगृह का सार है कि व्यक्ति को मात्र उतनी ही वस्तुएं अपने पास रखनी चाहिए जो जीवन हेतु अनिवार्य हों। अपरिगृह से मन तनावरहित व निश्चित रहता है क्योंकि उसके पास इतना बहुमूल्य कुछ नहीं होता कि उसे उसकी सुरक्षा करनी पड़े।

भौतिक वस्तुओं की तरह ही मस्तिष्क में निरर्थक विचारों का संग्रह नहीं होना चाहिए। मनुष्य यदि अपने मस्तिष्क में निरर्थक ज्ञान ठूंस रखता है तो वह परिगृही है।

नियम– शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्राणिधानानि नियमाः ।।32।। पा0यो0 सूत्र

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान पांच निमय हैं। ये नियम राजयोग का दूसरा सोपान हैं नियम व्यक्तिगत आचरण से सम्बन्धित होते हैं तथा इनमें कृति का अधिक महत्व होता है।

शौच– शौच का आर्थ है शरीर मन दोनों की पवित्रता। यह दो प्रकार का होता है–

1. बाह्रा शौच 2. आभ्यन्तर शौच।

मृत्तिका जल इत्यादि साधनों से पात्र, स्थान एवं शरीर के अंगों को शुद्ध करना बाह्रा शौच है।

राग, द्वेष, असूया, अभिमान एवं क्रोध आदि चित्त के विकारों को दूर करना ही आभ्यन्तर शौच है।

मानसिक शौच के अभ्यास में मन, मलिनता से रहित हो जाता है और व्यक्ति को सदैव प्रसन्नता की अनुभूति होती रहती है। मन एकाग्र रहता है। इन्द्रियों पर पूर्ण निग्रह रहता है। मन पूर्णतः शुद्ध और एकाग्र होने पर व्यक्ति को आत्मा के दिव्य स्वरूप का दर्शन होता है।

बाह्याभ्यान्तर शौच के परिणामस्वरूप सौमनस्य तथा सौमनस्यं से एकान्तपूर्वक इन्द्रिय विजय और आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त होती है।

सन्तोष– सन्निहित साधन से अधिक की इच्छा न करना ही सन्तोष है।

सन्तोषादुनत्तम सुखलाभः ।।42।। पा0यो0 सुत्र

सन्तोष से अनुपम सुख की अनुभूति होती है। असन्तुष्ट व्यक्ति कभी भी जीवन में सुखी नहीं रह पाता हैं वह सदैव निराश और चिन्तित ही रहता है। उच्च साधना हेतु तो सन्तोष सर्वोच्च प्राथमिकता है।

तप– तप का तात्पर्य है कष्ट सहन करना। तपस्वी कष्ट को अपनाता है परन्तु विवेकपूर्ण यह विश्लेषण करने के पश्चात् कि यह स्पष्ट सहन अपने लिये या दूसरों के लिये लाभप्रद होगा या नहीं।

तप शरीर और बुद्धि की सुस्ती, मंदता, न्यूनता और त्रुटियों को हटाकर उन्हे तेज, क्रियाशील, उन्नत, विकसित करने का एक अमोघ साधन है। तप स्पष्ट रूप से अपनी शक्तियों को तेज करना, तपाना है।

स्वाध्याय– स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः।44। पा0यो0 सूत्र

स्वाध्याय द्वारा इष्ट से एकत्व प्राप्त होता है। स्वाध्याय–प्रतिदिन प्रत्यक्ष रूप से कुछ अध्ययन, ईष्ट देवता की प्रार्थना है।

स्वाध्याय का अर्थ है–नेत्र बंदकर अपने अन्दर स्थित आत्मा का अवलोकन करना भी है। स्वाध्याय साधक को, ईष्ट पर मन एकाग्र करने की क्षमता प्रदान करता है।

ईश्वर प्रणिधान– प्रणिधान का अर्थ है–धारण करना, स्थापित करना। ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर को धारण करना, ईश्वर को स्थापित करना।

ईश्वर प्रणिधान के द्वारा ही साधक की समाधि सिद्ध होती है और योग की सर्वोच्च सीढ़ी पर आरूढ़ हो जाती है।

''समाधि सिद्धिश्वर प्रणिधानात्'' ।।45।। पा0यो0 सूत्र

ईश्वर प्रणिधान या ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण से समाधि की सिद्धि होती है। साधक को इस अवस्था में शरीर की सुध–बुध नहीं रहती, परन्तु वह लम्बे समय तक शांत, स्थिर व एकाग्र रहता है।

यम, नियम का शैक्षिक महत्व

यम व्यक्ति व समाज के सम्बन्धों को स्वस्थ और सन्तुलित बनाते हैं। वहीं दूसरी ओर नियमों के परिपालन से व्यक्ति की आन्तरिक अनुभूतियों में स्वस्थ सामंजस्य तथा संतुलन स्थापित होता है। यम नियम मन को शान्त, संतुलित तथा एकाग्र करते हैं और व्यक्ति में स्वयं तथा समाज के प्रति रचनात्मक मनोवृत्ति का निर्माण करते हैं।

यम के पांच अंग अहिंसादि से स्थायी मूल्य हैं जिनका चरित्र निर्माण में सर्वत्र उपयोग होता है। आज इन स्थायी मूल्यों पर भी प्रहार होने लगे हैं। शारीरिक शिक्षा जगत् में अहिंसक मूल्य का क्या प्रतिरूप हो, अपरिग्रह का किस प्रकार उपयोग हो। ब्रह्मचर्य का क्या स्थान हो और यह समस्त तथ्य इसी रूप में क्यों हो, इस दिशा में आज कोई चिंतन नहीं मिल पा रहा है। परिणाम है– अनैतिक आचरण, अनुशासनहीनता, अराजकता आदि। यम के अभ्यास से इन अराजक, अनैतिक, चरित्र भ्रष्ट, अनुशासनहीनता,

अनीतिपूर्ण कारकों पर रोक लगायी जा सकती है।

नियम– शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर–प्रणिधान।

प्रणिधान– अष्टांग योग के पांच नियमों का शारीरिक शिक्षा जगत् में उपयोग बाह्य व आन्तरिक शुचिता के रूप में किया जा सकता है। जबकि योग साधना में ये बहिरंग शुद्धि के लिये प्रयुक्त होते हैं। आज मनुष्य सन्तोष का अर्थ अपने स्वार्थ्य सिद्धि के रूप में करता है, तप को वह अपने क्षुद्र इष्ट सिद्धि का साधन मानता है। जबकि ईश्वर प्रणिधान को सामाजिक रूढ़िता एवं व्यक्तिगत आकांक्षा पूर्ति का साधन मानते हैं लेकिन वस्तुतः योग साधना में इनका उपयोग मन शुद्धि के लिये किया गया था। जिनका सकारात्मक परिणाम मिला करता था। आज की शारीरिक शिक्षा में योग की इन्हीं अवधारणाओं को आधार बनाकर शारीरिक शिक्षा में इनका उपयोग किया जाये तो शायद शारीरिक शिक्षा अधिक फलवती हो सकेगी।

आसनः–''स्थिरं सुखम् आसनम्'' 2/46/(पा0यो0 सूत्र) उपरोक्त सूत्र के अनुसार जो स्थिर एवं सुखदायी हो वह आसन है। योगाचार्य पतंजलि ने सुखपूर्वक बैठने की मुद्रा को आसन माना है। आसन शरीर को स्वस्थ, निरोग तथा योग साधना के योग्य बनाते हैं। आसन स्नायविक उत्तेजनाओं दुख व सुख, क्रोध व संयम, शीत व उष्ण इत्यादि विरोधी भावनाओं व प्रतिक्रियाओं के बीच संतुलन स्थापित करते हैं।

ततो द्वन्द्वानभिघातः ।48। (पा0यो0 सूत्र)

द्वन्द्व दो प्रकार के होते हैं–शारीरिक व मानसिक

शारीरिक द्वन्द्व– नाड़ी तथा मांस संस्थानों में असमन्वय।

मानसिक द्वन्द्व– मानसिक तनाव, संघर्ष, अनिर्णय की स्थिति। आसन अभ्यास से दोनों प्रकार के द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं और जीवन सुख शान्ति से परिपूर्ण होता है। आसन में शिथिलता होनी चाहिए व मन एकाग्र रहना चाहिए। आसन में शिथिलता का अर्थ है आसन को करने में न तो संघर्ष करना पड़े, न ही किसी प्रकार के तनाव व पीड़ा की अनुभूति होनी चाहिए।

आसन की शारीरिक शिक्षा में उपयोगिता

योगांगों में आसन सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं जनप्रिय साधन माना जाता है। प्रायः योग से तात्पर्य योगसानों से ही समझा जाता है। एक दृष्टि से यह उचित भी है, परन्तु सर्वांग नहीं।

आज शारीरिक स्वस्थता, एक बहुत बड़ी समस्या बन गयी है। हमारे शिक्षार्थी जो शारीरिक दृष्टि से प्रायः कमजोर है, शारीरिक शिक्षा प्राप्ति हेतु समुचित शारीरिक परिश्रम नहीं कर पाते हैं और अपने पाठ्यक्रमों के अधिकांश भागों का अध्ययन नहीं कर पाते हैं। वे ऐसा क्यों करते हैं इसके कई कारण हो सकते हैं, परन्तु शारीरिक अक्षमता इनमें प्रमुख है। योगासनों द्वारा शारीरिक निर्बलता को दूर कर एक सुदृढ़ काया प्राप्त की जा सकती है जो शारीरिक निर्बलता के कारण शारीरिक शिक्षा प्राप्त की बाधाओं को दूर करने में सहयोगी हो सकती है।

प्राणायाम–

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।।2/49।। पा0यो0 सूत्र।

आसनों के पश्चात् श्वास प्रश्वास की गति का रूकना प्राणायाम कहलाता है।

प्राण का अर्थ है–श्वास और आयाम का अर्थ है–नियंत्रणपूर्वक श्वास को लंबा करना अथवा रोकना। जब श्वास पूर्ण नियंत्रण के साथ थमती है तो उसे प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम में आयाम, जिसे श्वास की लम्बाई कहते हैं, बढ़ती है परन्तु श्वास की प्रति मिनट संख्या या गिनती में कमी आती है।

प्राणायाम के अभ्यास के समय कुछ इस प्रकार की क्रियायें होती है जिससे आत्मिक शक्ति मुक्त होती है। इस मुक्ति का उद्गम प्रकाशावरण के हटने अथवा मस्तिष्क की निरूद्वता से होता है, जिस प्रकार विद्युत बल्ब जलते हैं जो ऊर्जा मुक्त होती है उसी प्रकार प्राणायाम में मस्तिष्क की शक्तियाँ मुक्त हो अभिव्यक्त होती हैं। प्राणायाम मन को धारणा के लिये विकसित तथा तत्पर करता है।

प्राणायाम और शारीरिक शिक्षा

प्राणायाम योग साधना की एक ऐसी विधा है जिसके अनन्त आयाम हैं। कभी यह शरीर साधना का सम्यक् साधन बन जाता है, तो कभी मस्तिष्क को प्रशिक्षण देने लगता है तो कभी लगता है मन को नियंत्रित करने वाला सारथी बन जाता है। अपने विविध रूपों में प्राणायाम रूपों में प्राणायाम आधुनिक शारीरिक शिक्षा का एक प्रभावशाली अंग बनने की क्षमता रखता हैं। शारीरिक शिक्षा की प्रक्रिया जो विभिन्न चरणों में पूर्ण होती है उनमें शरीर, मन, मस्तिष्क सबका समान योगदान होता है और प्राणायाम इन सबको प्रभावित कर शारीरिक शिक्षा प्राप्ति की प्रक्रिया को एक नया स्वरूप प्रदान कर सकता है।

प्रत्याहार

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्यस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। पा0यो0 सूत्र प्रत्याहार का अर्थ है इन्द्रियों को उनके विषयों से विमुख करना। इन्द्रियों को वशीभूत करना प्रत्याहार का परिणाम है। प्रत्याहार की साधना से इन्द्रियां मनोकूल कार्य करती है। मन इन्द्रियों का दास नहीं रहता है। इन्द्रियाँ मन का अनुकरण कर उसके साथ अन्तर्मुखी हो जाती है।

प्रत्याहार के अनेक प्रकार हैं, जैस–त्राटक, नादयोग, जप, संगीत, कीर्तन आदि। इन सबका उद्देश्य इन्द्रियानुभूति का शुद्धिकरण तथा इन्द्रियों से मन को भीतर की ओर उन्नमुख करना होता है। प्रत्याहार से एकाग्रता की प्राप्ति होती है।

प्रत्याहार एवं शारीरिक शिक्षा

ऐन्द्रिक सुख की प्राप्ति हेतु मनुष्य विविध प्रकार के अनर्थकारी कृत्यों में लिप्त रहता है। प्रायः उसे ही सभी प्रकार की बुराईयों का कारण भी माना जाता है। शारीरिक शिक्षा जगत् में व्याप्त बुराईयों के लिये यह भी एक महत्वपूर्ण कारण माना जा सकता है। मगर व्यक्ति इस बुराई पर विजय प्राप्त कर ले तो वह विषय–वासनाओं को नियंत्रित करते हुए एक उदात्त शारीरिक शिक्षा प्राप्त कर सकता है, जो नैतिक निर्माण एवं चरित्र निर्माण में उपयोग हो सकती है।

धारणा

धारणा का अर्थ है मानसिक एकाग्रता। राजयोग की छठवीं सीढ़ी धारणा का तात्पर्य उन विश्वासों को धारणा करने से है जिनके द्वारा मनोवांछित स्थितियों को प्राप्त किया जा सकता है। अच्छे, आवश्यक, सामयिक एवं उपयोगी गुणों को अपने अन्दर धारण करना, धारण का व्यावहारिक अर्थ हो सकता है।

देश बन्धश्चितस्य धारणा ।11। पा0यो0

सूत्र उपरोक्त सूत्र के अनुसार मन को एक स्थान पर टिकाना धारणा है। धारणा के अन्तर्गत किसी एक वस्तु, क्षेत्र, बिन्दु पर मन को एकाग्र करने का प्रयास किया जाता है। एकाग्रता की इस स्थिति में सहज बोध की क्षमता प्रखर हो जाती है।

धारणा की एक एकाग्रता, मन के अन्दर उठने वाले वंचल विचारों को भंग भी होती है। व्यास भाष्य के अनुसार धारण के अन्तर्गत नाभिचक्र, हृदय कमल, नासिका का अग्रभाग, जिह्वा का अग्रभग आदि पर चित्त को स्थिर किया जाता है।

ध्यान

साधारण शब्दों में राजयोग की सातवीं पीढ़ी 'ध्यान' का अर्थ है–नियत विषय में अधिकाधिक मनोयोग के साथ तन्मय हो जाना, निमग्न हो जाना। धारणा नियम लक्ष्य में रूचि उत्पन्न करने का साधन है और ध्यान द्वारा तन्मय होने का प्रयास किया जाता है। ध्यान की साधना इस लक्ष्य की पूर्ति करती है कि व्यक्ति जो कुछ चाहता है उसका दृश्य चित्र बनाकर, मानसिक चेतना के सम्मुख रख, ध्यान द्वारा तदाकार अवस्था प्राप्त होने लगे।

पातंजलि योग सूत्र के अनुसार–''चेतना की तैल धारावत् अवस्था ध्यान होती है।''

ध्यान के दो बिन्दु महत्वपूर्ण हैं–

1. ध्येय वस्तु पर चेतना का निरन्तर प्रवाह एवं
2. यह चेतना रहनी चाहिए कि ध्यान की प्रक्रिया जारी है।

समाधि

ध्यान की पूर्णतया समाधि है। किसी वस्तु या बिन्दु पर चित्र निर्विकल्प रूप से एकाग्र हो स्थिर हो जाता है। तब यह अवस्था ही समाधि अवस्था कहलाती है। समाधि में स्वयं की चेतना के अभाव में सिर्फ ध्यान वस्तु उपस्थित होती है। धारणा में सिद्ध होने पर ध्यान की स्थिति आती है, जो स्वयं समाधि में परिणित हो जाती है।

साधक जैसे–जैसे समाधि की गहनता में प्रवेश करता, ध्येय बिन्दु स्पष्ट होता चला जाता है। साधक को अपने अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहता। अवस्था यह होती है कि उसे यह भी ज्ञान नहीं होता कि वह ध्यान एवं एकाग्रता का अभ्यास कर रहा है। इस अवस्था में मन की अर्न्तबाह्य वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। एकमात्र चेतना शेष रह जाती है।

समाधि की सहज एवं सर्वग्राह्य परिभाषा निम्नलिखित हो सकती है–''मन सहित पांचों ज्ञानेन्द्रियां यम पर विज्ञाम करती हैं और बुद्धि के विकार समाप्त हो जाते हैं, तो इस अवस्था को ऋषि–मुनि सर्वोच्च अवस्था अथवा समाधि कहते हैं।

ध्यान, धारणा व समाधि तीनों अंतरंग योग की अवस्थायें हैं। इनके पूर्व के पांच सोपानों की सम्बन्ध बुद्धि, चरित्र, आदत, मन, इन्द्रिया, प्राण आदि अन्नमय प्राणमय, मनोमय कोशों से है। इसीलिये इन्हें बहिंरग येाग कहते हैं। धारणा, ध्यान, समाधि का सम्बन्ध अर्न्तजगत एवं उसके अनुशासन से होता है।

धारणा, ध्यान, समाधि का शैक्षिक महत्व

योग के उपरोक्त तीनों सन्दर्भ मानसिक एकाग्रता से जुड़े हुए है। शारीरिक शिक्षा प्राप्ति के लिये मानसिक एकाग्रता की अपरिहार्यता से हम सभी भिज्ञ है। एकाग्रता के दो रूप हो सकते हैं–

1. निषेधात्मक एकाग्रता एवं
2. विधेयात्म्क एकाग्रता

ध्यान के तीनों सन्दर्भ विधेयात्मक शिक्षा प्राप्ति के सहायक तत्व बन सकते हैं और इसका प्रयोग आज की शारीरिक शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप में हो सकता है।

साराशं–योग शारीरिक शिक्षा मनुष्य को पूर्ण विकास की दिशा में अग्रसर करती है। योग शारीरिक शिक्षा की वैज्ञानिक युक्तियों से मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास होता है। योग शारीरिक शिक्षा मनुष्य की शरीर शक्तियों को क्रियाशील बनाती है तथा विभिन्न अंगों की क्रिया–प्रणाली के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। शरीर की ऊर्जा का सही दिशा में प्रयोग सम्भव बनाती है तथा शरीर की विविध समस्याओं का समाधान कर स्वस्थ शरीर प्रदान करती है। योग शारीरिक शिक्षा स्वस्थ भावनात्मक विकास करती है तथा भावनात्मक संघर्षों, बैचैनी, व्यग्रता व मानसिक विकारों को दूर करती है। मानसिक विकास को व्यापक एवं समृद्ध बनाती है एवं मानसिक शक्तियों को स्मृति, कल्पना, चिंतन तर्क को प्रशिक्षण प्रदान करती है। विद्यार्थियों का बौद्धिक विकास कर उनमें तार्किक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करती है।

सन्दर्भ

1. नगेन्द्र, एच0आर– योग, योग का आधार और उसके प्रयोग, पृ0–110
2. सरस्वती सत्यानन्द– मुक्ति के चार सोपान, पृ0–11
3. डॉ0 करंवेलकर, पृ0वि0– पातंजलि योग सूत्र, कैवलयधाम, लोणावाला, महाराष्ट्र, पृ0–65
4. पा0यो0 सूत्र, ⁄28
5. शर्मा, श्रीराम– यम, नियम
6. डॉ0 करंवेलकर, पृ0वि0– पातंजलि योग सूत्र, कैवल्यधाम, पृ0–67
7. सरस्वती, सत्यानन्द– मुक्ति के चार सोपान, पृ0–115–15
8. शर्मा, श्रीराम– यम, नियम, पृ0–7–8
9. पाण्डेय, राजकुमारी– भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, पृ0–127
10. सरस्वती सत्यानन्द– मुक्ति के चार सोपान, पृ0–116
11. शर्मा, श्रीराम– यम, नियम, पृ0–8
12. पाण्डे राजकुमारी– भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, ''स्तेयमशास्त्रपूर्वक दृष्ययाणां परतः स्वीकरणम् तरप्रतिषेधः पुनरस्पृहारूपमस्तेयमिति।''
13. डॉ0 करंवेलकर– पातंजलि योग सूत्र, पृ0–76
14. शर्मा, श्रीराम– यम, नियम, पृ0–9–10
15. कल्याण– योगतत्वांक विशेषांक वर्ष 65 (वि0सं0 2048) यो0त0 3 अं0 1। कल्याण कार्यालय, गीता प्रेस गोरखपुर।
16. पाण्डेय, राजकुमारी– भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, पृ0–128
17. डॉ0 करंवेलकर पु0वि0– पातंजलि योग सूत्र, पृ0–68
18. सरस्वती, सत्यानन्द– मुक्ति के चार सोपान, पृ0117–118
19. शर्मा, श्रीराम– यम, नियम, पृ0–20–21